# गुरु-शिष्य प्रश्नोत्तरी

**—शंकाओं का सहज समाधान**

समीक्षक : डॉ० सुरेश गौतम

दिगम्बरत्व की शीर्षमणि, मानव की ऊर्ध्वमुखी चेतना के प्रतीक, चिरन्तन मानवीय मूल्यों के अक्षय महाकाव्य, अध्यात्म पुरुष, मनस्वी चिन्तक, तपोनिष्ठ बालब्रह्मचारी, ज्योतिपुरुष १०८ आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज अलौकिक प्रतिभा के धनी हैं। जैन धर्म के अभ्युदयकर्त्ता इस पुण्यात्मा का श्री मुख सदैव स्वर्गिक शान्ति और तेज से दैदीप्यमान रहता है। पारस मस्तिष्क के इस अद्‌भुत व्यक्तित्व ने भारतीय सभ्यता-संस्कृति के साथ-साथ सम्पूर्ण वाङ्‌मय का गंभीर एवं मर्मज्ञ दृष्टि से मंथन किया है। भविष्य के प्रति आस्थावादी मूल्यों को निर्भीकता देने वाले इस अनासक्त कर्मयोगी का व्यक्तित्व मानव-कल्याण के लिए समर्पित है। बहुभाषाविज्ञ इस तपोमुनि ने भारतीय साहित्य और लोक के भौतिक प्रश्नों को गहरे जा कर छुआ है। भारतीय अध्यात्म दर्शन के मरुप्रदेश में भटकता सामान्य जन इस बहुभाषी तपस्वी की कृपा और कठोर परिश्रम से ही उसका रसास्वादन कर सका है। संस्कृत, कन्नड़, तमिल, बंगला, गुजराती आदि भाषाओं के भक्ति साहित्य को हिन्दी में और हिन्दी के भक्ति साहित्य को अन्य भारतीय भाषाओं में अनूदित कर इस मनीषी ने साहित्यिक-क्षेत्र में भी क्रान्ति का बिगुल बजा दिया। लेकिन इस बिगुल में युद्ध का शंखनाद नहीं, अपितु मानव-मात्र के लिए अहिंसा और शान्ति का संजीवन रस था जिसको पाने के लिए मानव सदैव तरसा-भटका है।

'गुरु-शिष्य प्रश्नोत्तरी' आचार्यचूड़ामणि, धर्मध्वजा रक्षक १०८ श्री देशभूषण जी महाराज विरचित एक ऐसा लघुग्रन्थ है जिसमें जीवन को निकट से जानने, उसका सदुपयोग कर सार्थक करने के लिए शिष्य ने गुरु से लोकव्यवहार और अध्यात्म के सामान्य और गम्भीर दोनों ही तरह के प्रश्न किए हैं और गुरु ने गम्भीर चिन्तन कर अपनी अमृतवाणी द्वारा शिष्य की जिज्ञासाओं का सार्थक समाधान किया है।

जीवन में गुरु का सर्वोच्च स्थान है और शिष्य की जिज्ञासाएं अनन्त। उन जिज्ञासाओं-शंकाओं का शमन समर्थ और सच्चा गुरु ही कर सकता है। सन्त कबीर ने कहा भी है—

**"गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूं पायँ।**
**बलिहारी गुरु आप जिन गोविन्द दियो बताय॥"**

मोक्ष-प्राप्ति अथवा आत्म-प्राप्ति मार्ग बिना गुरु के प्राप्त नहीं होता। इसलिए कल्याण-मार्ग से यदि जीवन प्राप्त करना है तो गुरु के प्रति आत्मिक असीम श्रद्धा और गुरु का समर्थ और सच्चा होना जीवन की अनिवार्यता है। चर्चित ग्रन्थ में मूढ़ बुद्धि शिष्य गुरु के सामने अपनी प्रश्नात्मक जिज्ञासाएँ रखता है और आचार्य श्री गुरु के रूप में उनका शमन करते हैं।

इस ग्रन्थ में शिष्य द्वारा कुल १०३ प्रश्न पूछे गए हैं। पाप-पुण्य पर गम्भीर चिंतन है। लौकिक प्रश्नों में निर्धनता, पुत्र-प्राप्ति, कपूत-पुत्र संयोग, पूर्व जन्म से सम्बन्धित अनेक जिज्ञासाएं, कुमार्गगामी होना, माता-पिता से दुर्व्यवहार, सुपुत्री लाभ, खोटी-खरी स्त्री से समागम के कारण अपमान, कीर्ति, सुख-दुख, रोग-निरोग के प्रति शिष्य की जिज्ञासाएं जितनी स्वाभाविकता के साथ कही गई हैं उससे कहीं अधिक स्वाभाविक और गम्भीर विश्लेषण करते हुए गुरु के प्रभावशाली उत्तर हैं। संयम-नियम, लक्ष्मी, धर्म-अधर्म, निर्बल-सबल, भय-अभय की स्थिति जानने की बेचैनी जीव को इस संसार में त्रस्त रखती है लेकिन गुरु के श्री मुख से उच्चरित उपदेश चंदन लेप बनकर उसकी संतप्त आत्मा पर लग जाता है। वह अनुभव करता है कि निस्सन्देह इस हांड़-मांस के बने जगत् में गुरु की अमृत-वाणी जीवन के दिशा-सूचक यन्त्र का काम करती है।

शिष्य सभी जिज्ञासाओं व प्रश्नों का उत्तर एकदम खोज लेना चाहता है। गुरु के समक्ष पुनः प्रश्नों की झड़ी लग जाती है। वह उद्विग्न है जानने को पराधीनता, भाग्यहीनता, कुरूपता आदि किस पाप का फल है और गुरु जीवन के निचोड़ का मूलमन्त्र देता है—"वत्स ! **पूर्व भव के पाप के उदय से होता है यह सब।**" शिष्य की उत्कण्ठाएं फिर भी शान्त नहीं होतीं। भाई-बहन, पति-पत्नी, मां-बाप, बेटी-बाप,



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुत्र-पिता, पुत्र-माता आदि मानवीय सम्बन्धों की गुत्थियों में वह उलझ जाता है। गुरु शिरोमणि इस सांसारिक बंधनों की निस्सारता का उपदेश कर उसे मानसिक थपेड़ों के सागर से पार उतार ले जाता है।

शिष्य का सहज प्रश्न है—"हे गुरुदेव ! इस जीव को मनुष्य जन्म किस पुण्य के उदय से प्राप्त होता है ?"

गुरु उत्तर देता है—"हे भव्य शिरोमणि ! जिस जीव ने पर भव में सरल भाव रखा हो, किसी जीव के प्रति द्वेष भावना न रखी हो, मन्द कषाय वाला हो, धर्म भावना सहित भद्र परिणामी हो, इत्यादि भावना से इस जीव को मनुष्य पर्याय मिलता है।"

"हे गुरुदेव ! यह जीव नरक में किस पाप के उदय से जाता है ?"

"हे भव्य ! जिस जीव ने पर भव में अनेक जीवों को सताया हो, क्रोध किया हो, जीव को दुःख दिया हो, मन में मारने की भावना की हो, अभक्ष्य भक्षण किया हो, धर्मभावना से रहित हो, पाप भावना सहित हो, धर्म से द्वेष किया गया हो, धर्मात्मा को देखकर ग्लानि या उनका तिस्कार किया हो, इत्यादि पाप के उदय से यह जीव नरक में जाता है।"

जीवात्मा-परमात्मा का चिंतन निरन्तर चलता है। जीवन के उभय पक्षों को प्रस्तुत करने वाला यह लघु ग्रन्थ कोई मामूली ग्रन्थ नहीं है। सामान्य जीवन से जुड़ी अनेकों भ्रान्तियों और जिज्ञासाओं को शान्त कर गुरु शिष्य को मोक्ष-मार्ग की ओर अग्रसर कर देता है। इससे अधिक जीवन की सार्थकता और हो भी क्या सकती है।

सरल बोलचाल की भाषा और प्रश्नोत्तर शैली में लिखी यह कृति अनुपम है। जिस सजीवता से प्रश्नों का समाधान इस कृति में किया गया है वह अपढ़ से अपढ़ व्यक्ति के लिए भी बोधगम्य है। यह उपलब्धि कम महत्त्व की नहीं है, जबकि देश में साक्षरता नाममात्र की हो। मानव-जीवन के अनन्त उलझे प्रश्नों व शंकाओं को प्रस्तुत करने वाला यह लघुग्रन्थ वस्तुतः एक मानसिक तृप्ति है। आध्यात्मिक-भोजन से भरपूर यह उसी प्रकार शान्ति देता है जैसे मरुप्रदेश में भटकते भूखे-प्यासे किसी पथिक को अनायास जल प्राप्त हो जाए। इसीलिए यह अमूल्य, संग्रहणीय एवं ऐतिहासिक महत्त्व का है।

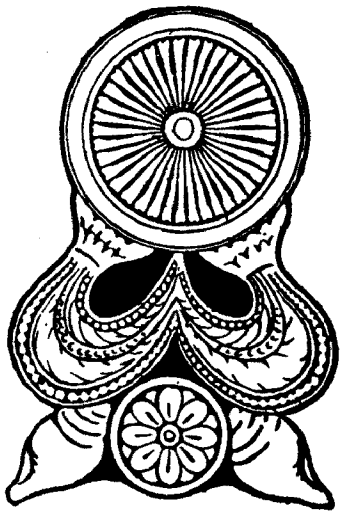



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org